राजस्थान के मध्यकालीन प्रभावक जैन आचार्य

—श्री सौभाग्य मुनि 'कुमुद'

भारत में श्रमण एवं ब्राह्मण संस्कृति का उत्स ठेठ आदिम सभ्यता के विकास के साथ जुड़ा मिलता है।[1]

सांस्कृतिक उत्थान-पतन की हजारों घटनाओं का निर्वहन करते हुए भी जो संस्कृति अपने मूल्य टिका पाई उसका अन्तःसत्व कुछ ऐसी विशेषताएँ लिये अवश्य होता है जो उस संस्कृति को अमरता प्रदान करता है।

श्रमण एवं ब्राह्मण संस्कृति के मूल्यों में जो सार्वभौमिकता के तत्व हैं, मानव की अन्तःचेतना की स्फुरणाओं एवं अपेक्षाओं को रूपायित करने की जो क्षमता है तथा जीवन को उच्च अर्थों में प्रेरित करने की प्रेरणा है वे ही ये तथा ऐसी जो विशेषताएँ हैं, ये ही वे गुण हैं जो इन महान संस्कृतियों को जन-जन के लिए लाभदायक और उपयोगी बनाते हैं।

भारत एक विशाल राष्ट्र है जो कभी आर्यावर्त के नाम से भी पहचाना जाता था। व्यवस्था खान-पान, भाषा, रीति-रिवाज और परिवेश की दृष्टि से अनेक भागों में बंटा हुआ है। फिर भी यह एक राष्ट्र के रूप में जुड़ा रहा। इसका एक कारण इसके पास उदात्त सांस्कृतिक मूल्यों का होना भी है।

कुछ वर्षों पहले भारत का जो हिस्सा राजपूताना कहलाता था, लगभग वह हिस्सा आज राजस्थान के नाम से पहचाना जाता है। भारत के अन्य भागों की तरह यहाँ भी श्रमण एवं ब्राह्मण संस्कृति जो कि भारतीय संस्कृति की दोनों अंगीभूत संस्कृतियाँ हैं, बहुत पहले से ही फलती-फूलती एवं विकसित होती रहीं।

जहां तक ब्राह्मण संस्कृति का प्रश्न है उसका विस्तार यहाँ श्रमण संस्कृति से भी अधिक व्यापक स्तर पर होता रहा। इसके प्रमाण यहाँ का विशाल वैदिक साहित्य, हजारों मंदिर एवं सैकड़ों तीर्थ हैं।

वैदिक दर्शन की वे सभी धाराएँ तो देश के कौने-कौने में फैली हुई हैं। राजस्थान में भी पहुँची और विकसित हुईं। यही कारण है कि अन्य भागों की तरह यहाँ भी शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत पुष्टि मार्ग, भागवती मार्ग के भक्त, नाथ, कबीर, दादू आदि पंथों के अनुयायी लगभग पूरे राजस्थान में पाये जाते हैं।

1. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र—हेमचन्द्राचार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहाँ तक श्रमण संस्कृतिप्रसूत धर्म और दर्शन का प्रश्न है, वे यहां वैदिक मान्यताओं जितने बिकसित एवं विस्तृत तो नहीं हो पाये किन्तु इतने वे नगण्य भी नहीं रहे कि राजस्थान के सांस्कृतिक एवं धार्मिक मूल्यों का अंकन करते हुए उनकी उपेक्षा की जा सके।

संख्या की दृष्टि से अल्पतर होने हुए भी श्रमण संस्कृति के विशिष्ट मूल्यों, धर्मों और दार्शनिक अवधारणाओं ने राजस्थान में न केवल अपना विशिष्ट स्थान बनाया अपितु समय-समय पर इन्होंने यहाँ के जन-जीवन को प्रभावित भी किया।

श्रमण संस्कृति की अंगीभूत मुख्य शाखाएँ जैन और बौद्ध हैं।

जहां तक बौद्ध शाखा का प्रश्न है उसका राजस्थान में कितनी दूर तक अस्तित्व रहा, यह एक अलग गवेषणा का विषय है।

श्रमण संस्कृति की अंगीभूत दूसरी शाखा जैन का अस्तित्व राजस्थान में नवीनतम शोधों के अनुसार प्राचीनतम होता जा रहा है।

चित्तौड़ के पास "मज्झमिका" नामक प्राचीन नगरी के ध्वंशावशेष प्राप्त हुए हैं यह नगरी महाभारत काल में बड़ी प्रसिद्ध रही। जैन धर्म का भी यह केन्द्र स्वरूप थी।[1]

काल के विकराल थपेड़ों के बावजूद जैन संस्कृति राजस्थान में अपने आदिकाल से अब तक फलती-फूलती और विकसित होती रही। हजारों मन्दिर, स्थानक, सभागार, विशाल साहित्य, शास्त्र भण्डार आदि न केवल आज भी राजस्थान के कौने-कौने में उपलब्ध हैं अपितु वे जैन संस्कृति को पल्लवित पुष्पित करने में भी संलग्न हैं।

राजस्थान में जैनधर्म के विस्तार और गौरवान्विति का अधिकतर श्रेय राजस्थान के उन गौरवशाली आचार्यों को जाता है जिन्होंने समन्वयात्मक दृष्टि, मानवीय योग्यता एवं क्षेत्रीय परिस्थितियों को सामने रखकर न केवल विशाल साहित्य की रचना की, संस्थानों का निर्माण कराया अपितु अपने उपदेशों के द्वारा जन-जन को जिनशासन की तरफ आकर्षित किया।

भगवान आदिनाथ से महावीर पर्यन्त २४ (चौबीस) तीर्थंकर जैनधर्म में पूज्य परमात्मा माने जाते हैं। उनमें से कतिपय तीर्थंकरों ने राजस्थान में विचरण किया है। ऐसा जैन कथा सूत्रों से प्रमाणित होता है। भगवान महावीर का दशार्णपुर (मन्दसौर) आना और दशार्णभद्र को प्रतिबोधित करना तो विश्रुत है ही।

मन्दसौर वर्तमान व्यवस्थाओं के अनुसार मध्य भारत का अंग अवश्य है किन्तु मेवाड़ का इतिहास देखने से ज्ञात होता है कि यह अनेक वर्षों तक मेवाड़ का अंग रहा।

महावीरोत्तर काल से लेकर विक्रमी दशवीं शताब्दी तक के समय में राजस्थान में ऐसे अनेक प्रभावक आचार्य और मुनि हो गये हैं जिन्होंने जिनशासन को उन्नति के शिखर तक पहुँचाया तथा अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादित किये। सिद्धसेन दिवाकर, ऐलाचार्य वीरसेन, पद्मनन्दी (प्रथम), साध्वीरत्न

---

1. मेवाड़ और जैनधर्म—बलवन्तसिंह महता, श्री आ० पू० प्र० श्री अ० भ० ग्रन्थ।

www.jainelibrary.org

याकिनी महत्तरा आदि-आदि संत सती-रत्न हैं, जो इस युग के जैन जगत के दमकते हीरे और ज्योतिर्मय नक्षत्र थे।

यहाँ मध्यकालीन आचार्य ही विवेच्य हैं। अतः प्राचीन युग के आचार्यों का विस्तृत परिचय नहीं दिया गया है।

जिनेश्वर सूरी

राजस्थान के महानतम आचार्यों में जिनेश्वर सूरि का नाम बहुत प्रख्यात है। ये खरतर गच्छ के आदि गुरु माने जाते हैं।

मालवा की प्रसिद्ध नगरी धारा में लक्ष्मीपति श्रेष्ठि के भव्य भवन में एक बार आग लग गई। उससे उसके वैभव की बड़ी हानि हुई किन्तु उसे सर्वाधिक दुःख उन ज्ञाननिधिपूर्ण श्लोकों के नष्ट होने का हुआ, जो भवन की दीवारों पर अंकित थे। उन्हीं दिनों वहाँ दो ब्राह्मण भ्राता आये हुए थे। एक दिन पहले भी वे श्रेष्ठी से मिले थे।

जब दूसरे दिन पुनः मिले तो श्रेष्ठी ने अपना दुःख उन्हें जताया। उन्होंने कहा—आप चिन्ता न करें। हम कल यहाँ आये थे तब श्लोक पढ़े थे, वे हमारी स्मृति में हैं। और उन्होंने सारे श्लोक पुनः अंकित करा दिये। इससे प्रभावित हो श्रेष्ठी ने दोनों ब्राह्मणकुमारों को जैनेन्द्रीया भागवती दीक्षा के लिए प्रेरित किया और अपने गुरु वर्धमान सूरि के पास दीक्षित कराया।

जिनेश्वर मुनि और बुद्धिसागर मुनि दोनों अद्‌भुत विद्वान सिद्ध हुए। जिनेश्वर सूरि को आचार्य पद प्रदान किया गया।

इन्होंने गुजरात तक विहार किया। दुर्लभराज ने इन्हें खरतर की उपाधि से मण्डित किया।

कथा कोष, लीलावती, वीर चरित्र आदि अनेक ग्रन्थों के आप रचयिता हैं। हरिभद्र के अष्टकों पर प्रसिद्ध टीका भी आपने लिखी। यह कार्य जालोर में सम्पन्न हुआ।[1]

इसी शती के प्रभावक आचार्यों में प्रभाचन्द्र बूँद गणी आदि के भी नाम उल्लेखनीय हैं। किन्तु विशेष परिचय नहीं मिल सका। आ० हरिषेण भी इस शती के महान आचार्य हैं। इन्होंने अपनी प्रसिद्ध कृति धम्म परीक्षा में मेवाड़ की बड़ी प्रशंसा की है। धम्म परीक्षा ग्रन्थ उपलब्ध है।

बारहवीं शती के प्रभावक जैन आचार्यों में जिनवल्लभसूरि, विमलकीर्ति, लक्ष्मीगणी आदि प्रमुख हैं। जिनवल्लभसूरि को चित्तौड़ में आचार्य पद प्रदान किया गया। इनकी १७ रचनाएँ उपलब्ध हैं।[2]

लक्ष्मीगणी ने सुपार्श्वनाथ चरित्र की रचना मांडलगढ़ में की, यह उक्त चरित्र से प्रसिद्ध है।

गुणभद्र मुनि राजस्थान के एक और विद्वान संत हो गये हैं। इनके द्वारा रचित ९३ श्लोक की एक प्रशस्ति विजोलिया के जैन मन्दिर में लगी हुई है। इसमें मन्दिर निर्माताओं के उपरान्त अजमेर के चौहानों और सांभर के राजाओं की वंशावली दी गई है। इनका समय तेरहवीं शती का बनता है।

---

1. खरतर गच्छ बृहद् गुर्वावली पत्रांक—9
2. गुर्वावली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य रत्नप्रभसूरि भी मेवाड़ के एक महान आचार्य हो गये हैं। इनकी एक प्रशस्ति जो महारावल तेजसिंह के समय लिखी गई थी, चित्तौड़ के पास घाघंसे की बावड़ी में लगी हुई है।[1] इसकी रचना १३२२ कार्तिक कृष्णा एकम रविवार को हुई थी। इसमें तेजसिंह के पिता जैत्रसिंह द्वारा मालवा, गुजरात, तुरूष्क और सांभर के सामन्तों को पराजित किये जाने का उल्लेख है। इन्हीं की एक प्रशस्ति चीरवा गांव में उपलब्ध है जो १३३० में लिखी गई हैं।[2] ५१ श्लोक है। इसमें जेत्रागच्छ के आचार्यों के नामों का उल्लेख है। साथ ही गुहिल वंशी बाप्पा के वंशज समरसिंह आदि के पराक्रम का वर्णन है।[3]

बारहवीं शताब्दी के प्रभावक आचार्यों में आचार्य नेमीचन्द सूरि का नाम बहुत प्रसिद्ध है। ये अद्भुत विद्वान, वक्ता और कवि मानस महापुरुष थे।

इनकी 'रयण मणिकोस', उत्तराध्ययन वृत्ति (उत्तराध्ययन की सुखबोधा टीका) धर्मोपदेश कुलक आदि रचनाएँ बड़ी प्रसिद्ध हैं। लेखक ने इन ग्रन्थों में दीर्घ समास पदावली का प्रयोग किया। काव्य की रोचकता में कहीं भी बाधक नहीं है। इनके काव्य में शील, संयम, तप आदि उदात्त गुणों का उत्कर्ष-पूर्ण वर्णन पाया जाता है।[4]

इसी शताब्दी के एक और अत्युत्तम महापुरुष हो गये हैं धनेश्वर सूरि! जिन्होंने प्रसिद्ध ग्रन्थ सुर-सुन्दरी चरियम् प्राकृत में पद्यमय लिखा। रचना प्रौढ़ विशाल और सुसंस्कृत है।

इसमें नैतिक तत्त्वों के साथ-साथ कथात्मकता का सुन्दर सुमेल है। इसमें लोक जन-जातियाँ जैसे आभीर, श्वपच आदि के उत्थान का सुन्दर वर्णन पाया जाता है।

इस ग्रन्थ को लेखक ने चन्द्रावती नगरी में बैठ कर लिखा है।[5]

पन्द्रहवीं शती के महानतम विद्वान आचार्यों में रामकीर्ति, भट्टारक धर्मकीर्ति, जिनोदयसूरि, भट्टारक सकलकीर्ति आदि प्रमुख हैं। जयकीर्ति के शिष्य रामकीर्ति बड़े विद्वान पुरुष थे। इनकी लिखी एक प्रशस्ति चित्तौड़ के समिद्धेश्वर महादेव के मन्दिर में लगी है। २८ पंक्तियों की इस प्रशस्ति में कुमार-पाल के चित्तौड़ आने का वर्णन है। प्रशस्ति छोटी किन्तु महत्वपूर्ण हैं।[6] भट्टारक सकलकीर्ति आदि-पुराण-उत्तरपुराण महान ग्रन्थों के रचयिता पन्द्रहवीं शती के श्रेष्ठतम आचार्य ये। इनकी २९ रचनाएँ उपलब्ध हैं। इन्होंने नेनवा के भ० पद्मनंदि के पास अध्ययन किया। इनका जन्म १४४३ तथा स्वर्गवास १४९९ में हुआ। ये बड़े प्रभावक आचार्य थे। इनका बिहारी लाल जैन ने एक शोध ग्रन्थ 'भट्टारक सकल-कीर्ति : एक अध्ययन' लिखा। इन्होंने जूनागढ़ में एक मूर्ति की प्रतिष्ठा भी कराई।[7]

भट्टारक भुवनकीर्ति, ब्रह्मजिनदास, भ० शुभचन्द्र, भट्टारक प्रभाचन्द्र आदि बड़े प्रभावक और रचनाकार आचार्य हो गये हैं। जिनका परिचय हमें नेमीचन्द्र शास्त्री कृत संस्कृत काव्य के विकास में

---

1. मेवाड़ का प्राकृत अपभ्रंश एवं संस्कृत साहित्य, अम्बालाल जी म० अभिनन्दन ग्रन्थ—ले० डॉ० प्रेमसुमन जी।
2. उपर्युक्त। 3. वीर विनोद भाग 1 पृष्ठ 389
4. शास्त्री, नेमीचन्द—प्राकृत भाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास; जैन, जगदीशचन्द्र—प्राकृतिक साहित्य का इतिहास।
5. नेमीचन्द्र शास्त्रीकृत—प्राकृत भाषाएँ व साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन।
6. .....में० प्रा० अ० स० सा०/अ० ग्र० डा० प्रेम सुमन। 7. जैन भण्डार्स इन राजस्थान पृ० 239।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनियों का योगदान लेख से उपलब्ध होता है। उन सभी आचार्यों ने राजस्थान में जिनशासन को बहुत गौरवान्वित किया। भट्टारक प्रभाचन्द्र ने तो अपनी गद्दी ही दिल्ली से चित्तौड़ स्थानान्तरित कर दी।[1]

पन्द्रहवीं शती के महानतम आचार्यों में सोमसुन्दरसूरि का नाम भी बहुत ऊँचा है। ये तपागच्छ के प्रमुख आचार्य थे। इन्हें रणकपुर में १४५० में वाचक पद प्रदान किया गया। बाद में ये देलवाड़ा आ गये। कल्याण स्तव आदि इनकी अनेक रचनाएँ हैं।[2]

गुरु गुण रत्नाकर इनकी कृति है। उसमें मेवाड़ के सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक जीवन पर प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध होती है।[3]

सोमसुन्दर के शिष्य मुनिसुन्दर भी विद्वान संत थे। इन्होंने देलवाड़ा में शान्तिकर स्तोत्र आदि की रचना की।[4]

इन्हीं के दूसरे शिष्य सोमदेव वाचक थे। इन्हें महाराणा कुंभा ने कविराज की उपाधि से मंडित किया।[5]

महामहोपाध्याय चरित्ररत्नराशि महान आचार्य थे। १४९९ में इन्होंने दान प्रदीप ग्रन्थ चित्तौड़ में लिखा जो एक अच्छी रचना है।

कविराज समयसुन्दर अपने समय के विद्वान महापुरुष थे। १६२० का इनका जन्म माना जाता है। इनका जन्म क्षेत्र और विकास क्षेत्र चित्तौड़ रहा। ये अद्भुत प्रतिभा के धनी थे। इनकी रचनाए अत्यन्त लोकप्रिय हुईं। एक कहावत चल पड़ी कि समयसुन्दर का गीतड़ा और कुम्भे राणे का भींतड़ा अर्थात् ये दोनों अमर हैं। बेजोड़ हैं। प्रद्युम्न चरित्र, सीताराम चोपई, नलदमयन्ती रास आदि इनके अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं।[6]

जिनशासन के गौरवशाली आचार्य परम्परा में आचार्य श्रीरघुनाथ जी म० सा० भी बड़े प्रभावक थे। यह आ० भूधरजी के शिष्य थे। इनका एक कन्या रत्नवती से सम्बन्ध भी हुआ किन्तु मित्र की मृत्यु से खिन्न हो ये मुनि बन गये। इन्होंने ५२५ मुमुक्षुओं को जैन दीक्षा प्रदान की। ये अस्सी वर्ष जिए। १७ दिन के अनशन के साथ पाली में १८४६ की माघ शुक्ला एकादशी को इनका स्वर्गवास हुआ।[7]

जैनाचार्य जयमल्ल जी ने १७८९ में दीक्षा ग्रहण की। १३ वर्ष एकान्तर तप किया और २५ वर्ष रात में बिना सोये जप-तप करते रहे। इनकी सैकड़ों पद्य बन्ध रचनाएँ बड़ी प्रसिद्ध हैं। लगभग सारी रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इनका १८५३ वैशाख शुक्ला १३ को 'नागोर' में स्वर्गवास हुआ।

अठारहवीं शताब्दी में एक और प्रसिद्ध आचार्य हो गये—भिक्षु गणी। ये रघुनाथ जी म० के शिष्य थे। इनकी दीक्षा १८०८ में हुई। इनकी अनेक ढालें लिखी हुई हैं जो बड़ी प्रसिद्ध हैं ओर भिक्षु ग्रन्थ रत्नाकर के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं।

---

1. जोहरापुरकृत भट्टारक सम्प्रदाय लेखांकन 265।
2. सोम सौभाग्य काव्य पृ० 75 श्लोक 14।
3. शोध पत्रिका भाग 6 अंक 2-3 पृ० 55।
4. राणा कुम्भा पृ० 212।
5. राणा कुम्भा पृष्ठ 212
6. राजस्थानी जैन इतिहास—अ० नु० अभि० ग्र० पृ० 464।
7. मिश्रीमल जी म० लिखित रघुनाथ चरित्र।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये जैन सूत्रों के विद्वान कवि थे। ये तेरापंथ सम्प्रदाय के संस्थापक हैं।

उन्नीसवीं सदी के महानतम संत रत्नों में पूज्य श्री रोड़ जी स्वामी का नाम बहुत ऊँचा है। इनके जन्म की निश्चत तिथि तो कहीं मिली नहीं। हाँ, जन्म सं० १८०४ का होना सम्भव है। इनका जन्म स्थान देपर गाँव है। यह गाँव नाथद्वारा और माहोली के मार्ग पर स्थित है। ओसवाल लोढ़ा गोत्र है। राजीबाई और डूंगर जी माता-पिता हैं। सं० १८२४ में हीर जी मुनि के पास दीक्षित हुए।[1]

ये घोर तपस्वी थे। प्रति माह दो अठाई तप, वर्ष में दो मासखमण तप और बेले बेले पारणा किया करते थे।[2]

रायपुर कैलाशपुरी सनवाड़ आदि स्थानों पर अज्ञानी और शैतान व्यक्तियों ने इन्हें कई कष्ट दिये किंतु इन्होंने परम समता भाव से सहा।

कई जगह अपराधियों को राज्याधिकारियों ने पकड़ा भी और दंडित करना चाहा किंतु इन्होंने उन्हें मुक्त कर देने को अनशन तक कर दिया।[3]

उदयपुर में हाथी और सांड के द्वारा ही आहार लेने की प्रतिज्ञा, जिसे जैन परिभाषा में अभिग्रह कहा जाता है, स्वीकार किया। आश्चर्य कि वे अभिग्रह सफल हुए। हाथी ने अपनी सूँड से मुनि जी को मोदक दिया और सांड ने अपने सींग से गुड़ अटका कर मुनि के सामने प्रस्तुत किया।[4]

यह वृत्तान्त भारत में मुख्यतया जैन समाज में बहुत प्रसिद्ध है। संवत् १८६१ में स्वामी जी का उदयपुर में स्वर्गवास हुआ। इनके साथ अनेक चमत्कारिक घटनाएँ भी जुड़ी हुई हैं।

इन्हीं के सुशिष्य हुए हैं पूज्य नृसिंहदास जी म०। ये खत्रीवंशीय गुलाबचन्दजी एवं गुलाबबाई की संतान थे। सरदारगढ़ में इनको पू० रोड़ जी स्वामी मिले और उनसे प्रतिबोधित होकर संयम पथ पर बढ़े। इन्होंने २१—२३ और माह भर के अनेक तप किये। ये बहुत अच्छे कवि भी थे।

महावीर रो तवन, सुमति नाथ को तवन, श्रीमती सती आख्यान आदि आपकी कृतियां मेवाड़ शास्त्र भंडार में हैं। सुमति नाथ स्तवन में १३ गाथा हैं। इसमें संक्षिप्त में एक घटना भी दी है।

दो माताओं के बीच एक पुत्र को लेकर झगड़ा था। दोनों पुत्र को अपना बता रही थीं। किसी से न्याय नहीं हो सका। यहाँ तक कि राजा से भी नहीं। तो रानी ने इस विवाद को सुलझाया। रानी ने कहा—बच्चे के दो टुकड़े कर आधा-आधा बाँट दिया जाए। इस पर वह माता जो असली नहीं थी इस निर्णय पर सहमत हो गई, वह तो चाहती यही थी कि मैं पुत्रहीन हूँ तो यह भी वैसी ही हो जाए किंतु द्वितीय माता ने इस निर्णय का विरोध किया। उसने कहा—यह पुत्र उसे दे दो। पर मारो मत।

---

1. बड़ी पट्टावली
2. नृसिंहदास जी म० कृत ढाल अं० गु० अ० ग्रन्थ० परि०।
3. नृसिंहदास जी म० कृत ढाल अं० गु० अ० ग्रन्थ० परि०।
4. रोड़ जी स्वामी ढाल (नृसिंह दास जी म० सा०) अं० गु० अ० ग्रन्थ० परि०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस पर रानी मान गई कि यही इसकी सच्ची माँ है। और पुत्र उसे सौंप दिया। जब रानी ने यह निर्णय दिया तब रानी की कृक्षि में एक पुत्र रत्न था। उसके जन्म लेने पर उसका नाम सुमति रखा। क्योंकि निर्णय करते हुए रानी की सुमति जागृत हुई। वह पुत्र बड़ा होकर सुमतिनाथ तीर्थंकर कहलाया।

प्रस्तुत भजन में यह सारा वर्णन संक्षिप्त में दिया गया है। इनका स्वर्गवास १८८९ फाल्गुन कृष्णा अष्टमी को हुआ।[1]

उन्नीसवीं सदी के आचार्यों में जयाचार्य का नाम भी बड़ा महत्वपूर्ण है। इन्होंने ७ आगमों पर पद्य बन्ध राजस्थानी में टीकाएँ लिखीं। जो एक महत्वपूर्ण कार्य है। इन्होंने और भी अनेक ग्रन्थों की रचना की है—जयाचार्य पर तेरापंथ सम्प्रदाय के मुनियों ने विस्तृत साहित्य लिखा है।

प्रभावक आचार्य परंपरा में पूज्य श्री घासीलाल जी म० सा० का नाम सदा ही हीर कणी की तरह दमकता रहेगा। इनका १९८५ में जशवन्तगढ़ में जन्म हुआ। इनके दीक्षा गुरु पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० हैं। इन्होंने स्थानकवासी जैनधर्म मान्य बत्तीस आगमों पर संस्कृत टीकाएँ लिख कर साहित्य जगत की इतनी बड़ी सेवा की है जो अप्रतिम है। कतिपय आगमों पर टीकाएँ तो अनेक आचार्यों ने लिखी किंतु ३२ आगमों पर प्रांजल संस्कृत भाषा में टीका लिख देना सामान्य कार्य नहीं है।

इन्होंने टीका ग्रन्थों के अलावा कई मौलिक ग्रन्थ भी लिखे हैं। कई वर्षों तक ये सरसपुर, (अहमदाबाद) में स्थिर रहे, वहीं ठहर कर साहित्य सेवा की और वहीं स्वर्गवास भी हुआ।

राजस्थान में मध्यकाल में शताधिक प्रभावक जैन आचार्य हुए हैं। जैनधर्म के जितने संप्रदाय यहाँ प्रचलित हैं सभी के इतिहास में ऐसे, गौरवशाली सत्पुरुषों का, धर्मधुरीण आचार्यों का सप्रमाण विस्तृत विवेचन मिलता है।

आवश्यकता है उन काल गर्भित महापुरुषों के इतिवृत्त को खोज निकालने की।

卐

1. मानजी स्वामी कृत गुरुगुण अ० गु० अभिनन्दन ग्रन्थ परिशिष्ट।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org